15,17 नवम्बर 2006
जिनवाणी, 178

श्रावक और कर्मादान

डॉ. जीवराज जैन

आवश्यक सूत्र में सातवें व्रत के साथ पन्द्रह कर्मादान को जानने योग्य बताया है। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए लेखक ने अपने मौलिक चिन्तन को शब्द की ज्योति से दीप्त किया है। श्रावक के जीवन में इसकी आवश्यकता के सभी पक्षों का सरल और ग्राह्य प्रस्तुतीकरण के साथ लेख में आधुनिक धंधों के परिप्रेक्ष्य में भी चर्चा की गई है। सिद्धान्तों की व्यवहारिकता का प्रतिपादन होने से लेख की उपयोगिता सिद्ध है। *-सम्पादक*

हर गृहस्थ के लिए यह अति आवश्यक है कि वह अपने धंधे, शिल्प या अन्य जीविकोपार्जन के लिए कर रहे कार्य के बारे में पूर्ण जानकारी रखे, जिससे वह अनावश्यक हिंसा व प्रगाढ कर्मबन्धन से बच सके। उसका आचरण व चित्त शुद्ध रह सके। इसके लिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'आसक्ति', 'भावना' और 'अहिंसा' के संबंध को ठीक से समझना आवश्यक है।

सावद्य-निरवद्य विवेक :

पदार्थों का सर्वथा परित्याग करना देहधारियों के लिए संभव नहीं होता है। लेकिन पदार्थों के भोग में वे आसक्ति का, ममत्व का तो सर्वथा परित्याग कर सकते हैं।

अनगार साधु यानी श्रमण लोग विवेकपूर्वक सांसारिक प्रवृत्तियों का त्याग करके, विरति धर्म स्वीकार करते हैं। लेकिन श्रावक को तो गृहस्थी के कर्म करने ही पड़ते हैं। किन्तु वह घर-गृहस्थी में रहता हुआ भी धर्म की आराधना कर सकता है। इसके लिए बताया गया है कि श्रावक को पदार्थ-भोग में परिमाण व उससे विरति करनी चाहिए। उनके भोग में अपनी आसक्ति को क्षीण करते रहना चाहिए। जो व्यक्ति केवल पदार्थों का त्याग करता है, किन्तु अपनी वासना को/आसक्तियों को कम नहीं करता है, वह व्यवहार दृष्टि से भले ही त्यागी नजर आता हो, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। त्यागी वही है जो आसक्ति का त्याग करता है।

गृहस्थ का सत्कर्म

जब तक मनुष्य का शरीर विद्यमान रहता है, तब तक उससे निरन्तर कर्म होता ही रहता है। कर्म दो प्रकार के होते हैं- सत् और असत् अथवा शुभ और अशुभ। सत्कर्म की प्रवृत्ति और अशुभ कर्म की निवृत्ति को धर्म बताया गया है। जो गृहस्थ जितना सत्कर्म करता है तथा अपने आचरण में जितनी समता रखता है यानी जितनी आसक्ति (ममत्व) क्षीण करता है, उतना ही वह धर्म का अधिकारी बनता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मादान

जैन गृहस्थ के लिए अणुव्रत रूप धर्म का विधान किया गया है। उसके १२ व्रतों में ५ मूल गुण रूप अणुव्रत हैं। शेष ७ व्रत-प्रत्याख्यान उत्तरगुण रूप हैं। सातवें उपभोग-परिभोग परिमाण व्रंत के अनुसार १५ प्रकार के 'कर्मादान' यानी व्यापार-धंधे नहीं करने का उपदेश है। श्रावक उनका त्याग करता है। यह व्रत एक गुण-व्रत है, जिसका उद्देश्य पहले ५ मूलव्रतों की रक्षा करना है।

कर्मादान क्या है- जिन धन्धों में व उ द्योगों में महाहिंसा होती है तथा ज्ञानावरणीय आदि कर्म का विशेष बंध होता है, उन्हें कर्मादान कहते हैं। ये सब घोर-हिंसा के हेतु हैं। चूंकि जीवन-यापन के लिए व्यापार या उद्योग करना भी आवश्यक हैं, तब प्रश्न उठता है कि जैन-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में इनके चयन व संचालन के लिए क्या सिद्धांत अपनाने चाहिए? चूंकि हर धंधे में पाप-क्रिया है, हिंसा है, अतः सीधा जवाब यह हो सकता है कि कोई भी धंधा मत करो। लेकिन यह व्यावहारिक नहीं है।

इसके लिए भगवान् महावीर ने सशक्त, व्यावहारिक व प्रायोगिक संदेश दिया है कि गृहस्थ लोग आध्यात्म को अपना कर कैसे व्यापार करें, कैसे उद्योग करें। आज के परिप्रेक्ष्य में भी यह संदेश उतना ही प्रासंगिक है। उतना ही प्रगतिशील है जितना २६०० वर्ष पूर्व था।

हिंसा का विश्लेषण- व्यावहारिक जीवन की सफलता के लिए हिंसा, अहिंसा का विश्लेषण सम्यक् प्रकार से समझना आवश्यक है। हिंसा के तीन रूप बताये गये हैं-

(१) जीवन जीते हुए हिंसा का हो जाना- जीवन जीते हुए प्रतिक्षण अनेकानेक जीवों की हिंसा हो जाती है। जैसे श्वास लेने में, उठने-बैठने में, पाचन-क्रिया में हिंसा होती है। किन्तु यह हिंसा, हिंसा की कोटि में नहीं आती है। इसमें न कोई संकल्प है और न ही इसे रोकने की शक्ति /सामर्थ्य है।

(२) जीवन की रक्षा करते हुए हिंसा का होना (आरम्भजा व प्रतिरक्षात्मक हिंसा)- द्वितीय श्रेणी की हिंसा में जीवन-यापन और संरक्षण का संकल्प है, हिंसा का नहीं। यद्यपि इसमें हिंसा है, किन्तु गृहस्थ-साधक के लिए यह हिंसा अपरिहार्य है।

(३) हिंसा के उद्देश्य से हिंसा करना (संकल्पजा)- हिंसा का जो तृतीय रूप है, वह निकृष्टतम है। इसमें हिंसा विवेकरहित एवं प्रमत्त दशा में होती है।

अशुभ भाव या मन की विषमता को ही आचार्य उमास्वाति ने प्रमत्त योग कहा है। इस योग से होने वाली हिंसा ही दोष रूप है, तथा प्रगाढ कर्म-बंधन करने वाली है। अतः प्रमत्त-योग पूर्वक हिंसा करने का सर्वथा निषेध किया गया है। शेष हिंसा, जैसे- आरम्भजा, उद्योगजा या विरोधजा हिंसा का गृहस्थ के लिए निषेध नहीं है। अपने विवेक को जागृत रखना है। हालांकि विवेकपूर्वक जीवन की आवश्यक क्रियाएँ करते हुए भी हिंसा हो जाती है। लेकिन साधक का संकल्प, हिंसा का नहीं रहता है। वास्तव में यतनापूर्वक क्रिया करने को ही धर्म कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोरंजन के लिए, स्वाद के लिए, स्वामित्व के अहंकार की पुष्टि के लिए जो हिंसा होती है, वह लोभ आदि कषाय के वश होती है। अतः प्रगाढ कर्म-बंध का कारण बनती है।

जो हिंसा जीवन-यापन के लिए आवश्यक नहीं है, उसे अनर्थ-हिंसा की श्रेणी में रखा गया है। इसके त्याग से या विवेक से, एक साधक आसानी से अहिंसा के मार्ग पर बहुत प्रगति कर सकता है।

जीवन यापन- जीवन-यापन के लिए गृहस्थ कैसा व्यापार करें, कैसा कर्म करे, इसका खुलासा पाने के लिए मुनि मेघकुमार ने भगवान् महावीर से पूछा, "हे भगवन्! कृषि, वाणिज्य, रक्षा, शिल्प आदि विभिन्न प्रकार के कर्म करता हुआ, एक गृहस्थ कैसे सत्प्रवृत्ति कर सकता है।"

भगवान् ने फरमाया, "मैंने हिंसा के २ प्रकार बतलाये हैं-अर्थजा और अनर्थजा। गृहस्थ अनर्थजा यानी अनावश्यक हिंसा का जितनी मात्रा में त्याग कर सकता है, उतनी मात्रा में उसकी प्रवृत्ति सत् हो जाती है। भगवान ने ऐसी सुन्दर आचार नीति का उपदेश दिया है कि जीवन के लिए कोई आवश्यक कार्य भी न रुके और आत्मा बंध से लिप्त भी न हो।

१. अर्थजा हिंसा - अपने लिए, परिवार के लिए, समाज व राज्य के लिए जो हिंसा की जाती है, वह अर्थजा की श्रेणी में आती है। चूंकि एक-दूसरे के लिए परस्पर सहयोग करना समाज का आधारभूत तत्त्व है, अतः समाज के लिए जो हिंसा की जाती है, उसे भी अर्थजा हिंसा कहते हैं। युद्ध के समय स्वयं या देश रक्षा के लिए की गई हिंसा भी इस श्रेणी में आती है। इसमें प्रधान साध्य है 'समभाव'। यद्यपि कोई भी हिंसा, कहीं पर भी निर्दोष नहीं होती है (युद्ध में भी), परन्तु उसकी कर्म-लेप-शक्ति में यानी प्रगाढता में अन्तर होता है। आसक्ति का लेप गाढा और अनासक्त कर्म का लेप मृदु/हल्का होता है। अर्थजा हिंसा करते हुए भी जो व्यक्ति प्रबल आसक्ति या ममत्व नहीं रखता, वह चिकने कर्म-पुद्गलों से लिप्त नहीं होता है। हिंसा चाहे हमें विवशता में करनी पड़े, लेकिन उसके प्रति आत्मग्लानि व हिंसित के प्रति करुणा बनी रहे, ऐसा प्रयास रहना चाहिए।

यानी समाज द्वारा सम्मत कर्म करता हुआ व्यक्ति यदि मन को अनासक्त रखे तो वह दृढ लेप से लिप्त नहीं होता है। कहा है -

सम्यक् दृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल,
अन्तर सुं न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।

२. संकल्पजा हिंसा- मन के संकल्पों से जानबूझ कर की गई भाव हिंसा भी संकल्पजा हिंसा है। यह गृहस्थ, साधु सभी के लिए त्याज्य है। क्योंकि निश्चय या सैद्धांतिक दृष्टि से हिंसा भावों में ही है, बाहर में हिंसा का कर्मबंध से उतना सम्बन्ध नहीं है। इसमें महत्त्वपूर्ण है- व्यक्ति का संकल्प। जैसे डाक्टर के हाथ से इलाज के दौरान यदि मरीज मर भी जाता है तो डॉक्टर संकल्पी हिंसा का दोषी नहीं है। लेकिन एक डाकू की गोली से मारा गया सेठ, उसके लिए प्रगाढ कर्म-बंधन का हेतु है। क्योंकि डाकू की भावना उसे मारने की थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविरति एवं प्रवृत्ति

अविरति में कोई परिमाण नहीं, कोई व्रत नहीं होता है। अविरति-क्रिया निरंतर होती रहती है, जो कर्म-बंधन या हिंसा का अनजाने में ही प्रमुख कारण बनती है। अतः गृहस्थ को परिवार व धंधों में, तथा गमनागमन व उपभोग- परिभोग में हमेशा परिमाण या सीमा निर्धारित करनी चाहिए। इससे अविरति कर्म की यानी अनर्थदण्ड की हिंसा से सहज में ही निवृत्ति हो जाती है।

प्रवृत्ति क्रिया सोच-समझकर व संकल्प से की जाती है। प्रश्न उठता है कि श्रावक को इसमें विवेक कैसे रखना चाहिए? श्रावकों के नियमों के आधार पर इसमें विवेक रखा जाता है। श्रावक के दो प्रकार कहे गये हैं। एक सामान्य दर्जे का श्रद्धालु गृहस्थ और दूसरा विशिष्ट श्रावक।

अर्थोपार्जन के लिए सामान्य श्रावक को भी धंधे व शिल्प का चुनाव करते वक्त यह विवेक रखना चाहिए कि कोई महारम्भी, त्रसकायी हिंसा या पंचेन्द्रिय-हिंसा वाला कर्म न हो। फिर उसके परिपालन में अल्पीकरण व मर्यादा का प्रयास रहे।

विशिष्ट श्रावक तो अर्थोपार्जन की भी मर्यादा रखता है। अपनी आवश्यकताओं व खर्च का इतना अल्पीकरण कर लेता है कि अर्थोपार्जन में वह लोभ से बच सके। उसका चिंतन इस प्रकार चलता है कि उसका अर्थोपार्जन, पुण्य के उदय से, आसानी से हो रहा है। लेकिन इसके कारण उसमें अहंकार व कषाय भाव पैदा न हो, इसके लिए वह निरंतर जागरूक बना रहे।

आजीविकार्थ वर्णव्यवस्था के अनुरूप कर्म

प्राचीनकाल की सामाजिक-व्यवस्था में धंधे और कर्म समाज के विभिन्न वर्गों में बंट गये थे। इसमें वर्ण, कुल व जाति का ध्यान रखा जाता था। उसी के अनुरूप आजीविका हेतु कर्म की व्यवस्था भी की गई थी। विशेष कर्म, जो समाज के लिए आवश्यक थे, विशेष वर्गों के सुपुर्द कर दिये गये थे। जिससे वे उसे अपना धर्म समझकर करते थे। यह उनकी अर्थजा हिंसा थी। फिर भी उसमें वे अपना विवेक एवं अपनी जागरूकता बनाये रखते थे। वे श्रावक भी पूर्ण व्रती श्रावक की श्रेणी में गिने जाते थे। यह जैन दर्शन का सबल व्यावहारिक पक्ष था। गृहस्थी की सामान्य आवश्यकता, जैसे दालें बनाना, मिट्टी के घड़े बनाना, खेती करना आदि भी वर्ग विशेष के ग्राह्य धंधे थे। उनको 'कर्मादान' की श्रेणी में खड़े करके, त्याज्य धंधे या घृणित धंधे नहीं बना दिये गये।

उपासकदशांग सूत्र में वर्णन आता है कि सकडाल श्रावक के बर्तनों की ५०० दुकानें थीं। वह कुम्हार का काम करते हुए भी अच्छा श्रावक गिना गया। जबकि बर्तन बनाने के भट्टों का धंधा पहला कर्मादान 'इंगालकम्मे' बताया गया है।

दंक नामक एक प्रजापति (कुम्हार) भी अच्छा श्रावक हुआ था, जिसने सुदर्शन साध्वीजी की श्रद्धा को अपनी बुद्धि से स्थिर कर दिया था। वह मिट्टी के बर्तन बनाता और बेचता था, लेकिन वह संतोषी था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा उसने भोगोपभोग की मर्यादा कर रखी थी।

पन्द्रह कर्मादान का खुलासा

श्रावक के सातवें व्रत में जो १५ कर्मादान बताये हैं, वे प्रगाढ कर्म-बंधन के हेतु बनते हैं। इनमें ७ प्रकार के कर्म (कम्मे) वाले शिल्प व ८ प्रकार के व्यापार-धंधे सम्मिलित हैं। आज के युग में यंत्रीकरण व विशालता का आयाम इनमें जुड़ जाने से, एक ही धंधे में एक से ज्यादा कर्मादान का समावेश हो सकता है।

१. निम्नलिखित धंधे व शिल्प सामान्यतः कर्मादान की श्रेणी में आते हैं-

इंगालकम्मे (अंगार कर्म) - इनमें अग्निकाय व त्रसकाय का महारम्भ होता है, यथा- ढलाई (फाउण्ड्री), लोहार खाना (फोर्ज) व मशीन शॉप। यहाँ बिजली व भट्टियों का खूब उपयोग होता है। यह प्रायः हर उद्योग व मेन्यूफेक्चरिंग इंडस्ट्री का आधारभूत कर्म है। कोयला बनाने के उद्योग के अलावा, विद्युत्-उत्पादन (पन बिजली, अणु विद्युत्) आदि के कर्म प्रत्यक्षतः इसी के अंदर आते हैं। कुछ धंधे परोक्ष रूप से इंगालकम्मे से जुडे हैं, जिनमें कोयला या बिजली का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग होता है, यथा- इस्पात, सीमेंट व रिफायनरी उद्योग।

साडी कम्मे - वाहन (गाड़ी, मोटर व उसके कल-पुर्जे) बनाने वाले उद्योगों में काम करने वालों को अंगार कर्म के अलावा शकट (साडी) कर्म भी लगता है। वायुयान, रेल इंजन, बस, ट्रक, कार, स्कूटर आदि वाहन प्रत्यक्षतः साडी कम्मे में आते हैं। इन वाहनों के कलपुर्जे परोक्षतः साडीकम्मे से ही संबंधित हैं।

जंतपीलण कर्म- खाद्यतेल उद्योग, कपास के उद्योग एवं गन्ना-रस के उद्योग में काम करने वालों को आधुनिक युग में अंगार कर्म (बिजली आदि का उपयोग) के अलावा यह जंतपीलण कर्म भी लगता है।

फोडी कम्मे- दालें बनाने व पीसने वाले उद्योग तथा खेती व खनन उद्योग का काम करने वाले फोडी कर्म के अलावा अंगार कर्म के भी भागी बन सकते हैं।

उपर्युक्त सभी उद्योग व शिल्प में अंगार कर्म की मात्रा कम-ज्यादा हो सकती है। जैसे ढलाई, लोहार खाना व बिजली उत्पादन में काम करने वाले सीधे अंगार कर्म का कर्मादान करते हैं। लेकिन अन्य तीनों में ज्यादातर बिजली से चलने वाली मशीनों का ही अंगार-कर्म लगता है।

२. निम्नोक्त धंधों (कर्म) के करने में प्रायः एक ही कर्मादान का योग रहता है -

वणकम्मे- वृक्ष, फल-फूल, पत्ते काटकर व्यापार करने तथा वनस्पति आधारित कर्म करने में वणकम्मे दोष लगता है।

भाडी कर्म- वाहन व मकान आदि भाड़े में देना व उनका फायनेन्स करना आदि व्यापार-कार्यों में भाडी कर्म का दोष लगता है।

निल्लंछण कम्मे- जानवरों के अंगोपांगों का छेदन-भेदन करना। यह कर्म साधारणतया जैन श्रावक नहीं करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. निम्नोक्त वस्तुओं का व्यापार करने वाले 'वाणिज्य कर्मादान' के महारम्भी बनते हैं -

दंतवाणिज्जे- त्रसकायिक जीवों के अवयवों का व्यापार करने, जैसे दाँत, केश, चमड़ा, शंख आदि के क्रय-विक्रय से दंतवाणिज्जे दोष का भागी होता है।

लक्खवाणिज्जे- जिसमें त्रसकाय जीवों की बहुत विराधना हो, वैसे पदार्थों का व्यापार करना। जैसे- लाख, चपड़ी, रेशम, सड़ा अनाज आदि के व्यापार करने में लक्खवाणिज्जे दोष लगता है।

केसवाणिज्जे- केशवाले जीव जैसे- गाय, भैंस, भेड़, पक्षी, घोड़ा आदि के व्यापार से केसवाणिज्जे दोष लगता है।

रसवाणिज्जे- मदिरा, पेट्रोल, शहद आदि रसवाले या प्रवाही पदार्थ का व्यापार करने में व्यक्ति रसवाणिज्जे दोष का भागी बनता है। रस-पदार्थ के उत्पादन उद्योग में कार्य करने वालों को 'कर्मादान' लगता है।

विस-वाणिज्जे- संखिया आदि विष, तलवार, पिस्तौल आदि अस्त्र-शस्त्र, टिड्डी, मच्छर मारने की दवा, टिकिया आदि के व्यापार में विसवाणिज्जे दोष लगता है।

उपर्युक्त ५ प्रकार के 'व्यापार-कर्मादान' में से ४ कर्मादानों का जैनी श्रावक थोड़े से विवेक व संयम से परहेज कर सकते हैं। केवल चौथे 'रस वाणिज्जे' में मदिरा/शहद जैसे महाविगयी पदार्थों के व्यापार को नहीं करना ही उचित है।

४. निम्नोक्त ३ प्रकार के 'ठेकों' का काम करने से श्रावक लोग परहेज कर सकते है -

दवग्गिदावणया- खेत, जंगल, घास आदि को अग्नि से जलाकर साफ करने का ठेका। यह अग्निकाय से युक्त होने पर भी अंगार कर्म से भिन्न प्रकार का कर्मादान माना गया है।

सरदहतलायसोसणया-तालाब,झील आदि को सुखाकर अपूकाय का महारम्भ तथा उसके आश्रित जलचर-त्रसकायिक जीवों की विराधना का काम नहीं करना ही श्रावक के लिए उचित है।

जैसे फाउण्टेन, एक्वेरियम बनाने का काम। तालाब आदि को सुखाकर खेती लायक बनाना। नहरें आदि बनाकर सिंचाई परियोजना का ठेका भी इसी के अन्तर्गत आता है। आधुनिक जमाने में ऐसे ठेकों की बहुलता है। नहर आदि की परियोजनाओं का ठेका भी इसी के अन्तर्गत आता है। आधुनिक जमाने में ऐसे ठेकों की बहुलता है। नहर आदि परियोजनाओं से जैनी लोग काफी जुड़े हुए हैं।

असईजणपोसणया- शिकारी कुत्ते, वेश्यावृत्ति आदि का पोषण करना आदि कार्य श्रावक के लिए त्याज्य हैं।

उपर्युक्त १५ कर्मादान का विश्लेषण समझने से यह पता चलता है कि देश-विरत श्रावक के लिए उदरपूर्ति के ऐसे अनेक साधन हो सकते हैं, जो अल्पतर पाप वाले हैं। अल्पारम्भ से जब जीवन निर्वाह हो सकता है, तब अनन्त जीवों की घात कर आत्मा को गुरुकर्मी बनाना विवेकशील श्रावक के लिए उचित नहीं है। भगवान् महावीर ने विचार को सम्यक् बनाने पर बल दिया। विचार-शुद्धि होने से आचार आसानी से शुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होंगे। कुत्सित या लोक निन्दित कर्म करना या घातक पदार्थों का व्यापार करना भी महारम्भ में रखा गया है।

अल्पारम्भी व्यापारों का चुनाव

अल्पारम्भी-अल्पपरिग्रही श्रावक पाप से बचने का अधिकाधिक प्रयास करता है। सांसारिक दायित्वों के निर्वहन के लिए वह व्यापार/व्यवसाय/ उद्योग/पेशा ऐसा चुनने का लक्ष्य रखता है जिससे सांसारिक कार्य करते हुए भी आत्मोत्थान के मार्ग पर चला जा सकता है। जागृति एवं विवेक के साथ इन कार्यों को करने में उसे आर्थिकपूर्ति करते हुए भी अधिक कर्मबंध से बचने में सफलता मिल सकती है। ऐसे कतिपय आजीविका के साधन इस प्रकार हैं -

१. पंसारी का व्यापार - अनाज का व्यापार तथा घी, गुड़ आदि पदार्थ का व्यापार भी व्यवहार सम्मत है।

२. कपड़े का व्यापार

३. सोने-चाँदी का व्यापार

४. शाकाहारी निरामिष दवाइयों एवं अस्पताल का व्यापार-धंधा

५. डॉक्टर, चार्टर्ड एकाउन्टेट, टेक्स कंसलटेन्ट (सेवा प्रदान करने वाला) आदि प्रोफेशन तथा शिक्षा व प्रशिक्षण का कार्य।

उद्योगजा-हिंसा में विवेक

उद्योगजा हिंसा में विवेक तथा व्यापार चुनाव के साधारण नियम हर गृहस्थ को अपने व्यापार में जागरूकता रखने के लिए जानना व समझना बहुत जरूरी है। उद्योग व व्यापार का रास्ता चुनने के पूर्व युवक या श्रावक को सर्वप्रथम हिंसा व अहिंसा के उपर्युक्त आयाम का सापेक्षिक विश्लेषण करके उसे भलीभाँति समझ लेना चाहिए। इसमें साधु महाराज या ज्ञानी श्रावक से मार्गदर्शन भी मिल सकता है। उपलब्ध संभावित उद्योगों या व्यापार में चुनाव के लिए यह विवेक रखे कि अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार ऐसा उद्योग व व्यापार करे, जिसमें अपेक्षाकृत कम हिंसा होती हो।

मार्गदर्शन

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर

(अ) निम्न ३ प्रकार के धन्धे सर्वथा त्याज्य हैं-

(१) जिनमें प्रत्यक्ष रूप से त्रसकाय जीवों की हिंसा होती हो। (जैसे बूचड़खाने, रेशम बनाना आदि)

(२) जिन धंधों से उपर्युक्त कार्यों की अनुमोदना होती हो या प्रोत्साहन मिलता हो। जैसे अनजाने काम के लिए जानवर बेचना या रेशम का या माँस का व्यापार करना।

(३) कुव्यसन वाले पदार्थों या सामग्री का व्यापार करना तथा मदिरा बनाना व बेचना आदि कार्यों का त्याग करना।

(ब) अन्य धंधे करने में श्रावक की भूमिका का निर्वहन निम्न रूप में हो सकता है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बचे हुए धंधों में से जहाँ तक हो सके उन धंधों या उद्योगों को चुनना चाहिए, जिनमें प्रत्यक्ष रूप में स्थावर जीवों की विराधना अपेक्षाकृत कम होती हो। यदि अन्य विकल्प उपलब्ध न हो तो वैसे धंधों का अल्पीकरण या सीमाकरण करना चाहिए। किसी भी धंधे को मालिकाना रूप में चलाना या एक इकाई रूप में नौकरी करना, दोनों में भिन्न प्रकार के 'भाव' समझ में आते हैं। इस अपेक्षा से हिंसा की मात्रा इस प्रकार है -

स्वामित्व के रूप में धंधा - अ श्रेणी

नौकरी के रूप में पेशा - ब श्रेणी

अन्य अनुमोदक रूप में - स श्रेणी (कंपनी के शेयर रखना)

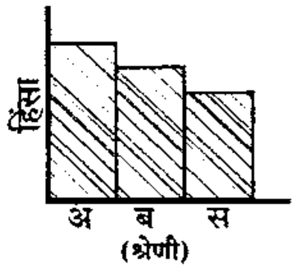

चित्र १. हिंसा की सापेक्ष मात्रा

भट्टे - जहाँ अग्निकाय की प्रत्यक्ष हिंसा निरंतर हो रही है। जैसे बिजली व आग की भट्टी के उद्योग, ब्लास्ट फर्नेस, धातु गलाना आदि। इनमें हिंसा की मात्रा सबसे अधिक है। इनसे परहेज करना अच्छा है। स्टील प्लांट, पावर हाउस आदि को मालिकाना रूप में चलाना, या उनमें नौकरी करना या उनसे संबंधित वस्तुओं का व्यापार करना, उनके शेयरों को रखना- आदि में सापेक्षिक हिंसा को उपर्युक्त चित्र नं. १ के अनुसार समझना चाहिए।

खेती, कंस्ट्रक्सन, खनन आदि- ये भी उपर्युक्त १ ब की तरह कर्मादान हैं। चूंकि इनकी आवश्यकता भी समाज व देश के लिए मूलभूत है, अतः इन धंधों को भी अर्थजा के रूप में अपनाया जा सकता है। लेकिन जैन श्रावक को यह सतत जागरूकता व विवेक रखना चाहिए कि वह इनमें अनर्थजा हिंसा से बचे तथा इनमें हो रही हिंसा का अल्पीकरण करता रहे। जैसे पानी व अग्नि की मात्रा में कमी करना आदि। स्वामित्व, नौकरी आदि में सापेक्ष हिंसा को चित्र १ से समझ लेना चाहिए।

इनसे बेहतर धंधे व उद्योग वे हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से अग्निकाय व अप्काय 'पानी' की जीव हिंसा भी न हो। जैसे लोहा या धातु का व्यापार, मशीनें चलाना या इनसे संबंधित वस्तुओं का व्यापार करना।

भगवान् के संदेश में यह पक्ष उजागर होता है कि अहिंसा में 'भावना' का महत्त्व ज्यादा है। क्रिया तो कर्म-पुद्गलों को आत्मप्रदेशों के पास लाती है। 'भावना' बंध का कारण बनती है। शुद्ध व करुणा भावना रखने से यह 'बंध' गाढा नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सावधानी- अपने कार्य अथवा व्यापार में यह विवेक भी रखें कि हमारी किसी भी वृत्ति से, कार्यस्थल से अन्य लोगों को त्रसकाय या स्थावर जीवों की महाहिंसा करने का हमारा प्रोत्साहन या अनुमोदन न दिखाई दे। यदि दिखता है, तो उस कार्य से परहेज रखें। जैसे माँसाहारी होटल या रेस्ट्राँ में बैठकर शाकाहारी भोजन करना। बार/शराबखाने में बैठकर शीतल पेय पीना। अनजाने में कोई दर्शक यह समझने न लगे कि हम माँसाहार या उससे परहेज करना उचित नहीं समझते या शराब को पीना अनुचित नहीं समझते।

(स) जीवन-यापन के धंधों में भी आंतरिक तप -

जैन दर्शन बताता है कि हम अपने जीवन-यापन के धंधे करते हुए भी किस प्रकार सरलता से विनय, तप व पश्चात्ताप जैसे बड़े आंतरिक तप की साधना कर सकते हैं। श्रावक जागरूक रहते हुए यह भावना रखे-

(१) कि मैं अपने घोर हिंसा वाले धंधे में **हिंसा का अल्पीकरण करूँ** तथा निकट भविष्य में योजनाबद्ध तरीके से इसका सीमाकरण करूँ या निवृत्त होऊँ।

(२) कि **यह धंधा मेरी विवशता है।** आत्मग्लानि व करुणा का भाव जागृत रहे।

(३) कि मेरे व्यवहार व भाषा से लोगों को स्पष्ट दिखाई दे कि मैं **'जीव-हिंसा' कम करने या टालने में सतत प्रयत्नशील हूँ।** अन्य लोगों को भी जागरूक रहने का संदेश व प्रोत्साहन मुझसे मिलता रहे।

मन में ऐसी भावना रखने से गृहस्थ अनायास उच्च तप का साधक बन जाता है।

आधुनिक विशेष धन्धे- अब कुछ धंधों का विशेष विश्लेषण किया जा रहा है।

(१) गिरवी - इसमें केवल सामान रखकर बदले में ब्याज पर पैसा दिया जाता है।

उद्देश्य - ग्राहक को अपनी रोजमर्रा की वस्तुओं के लिए या कभी-कभी व्यापार के लिए पैसा दिया जाने का उद्देश्य है। ग्राहक की नीयत के बारे में कोई पूछताछ नहीं होती है।

कर्म बन्ध की विवक्षा - १. अपना अर्थ-उपार्जन बिना ज्यादा आरम्भ/समारम्भ के हो जाता है। ग्राहक हो सकता है, शराब पीयेगा, माँस खरीदेगा। लेकिन वैसी तो करुणा-दान में भी संभावना रहती है। अतः यह धंधा कम हिंसा का माना जा सकता है।

(२) फायनेन्स - उपकरण, वाहन खरीदने के लिए सूद पर रुपया देना।

उद्देश्य - ग्राहक अपने अर्थोपार्जन के लिए वाहन या विलासिता के लिए घर सामान खरीदने के लिए पैसा लेता है।

कर्मबंध की विवक्षा - इन उपकरणों का उपयोग आगे हिंसा का निमित्त बनता है, ऐसी जानकारी तो रहती है। अतः परोक्ष रूप में ही हिंसा की अनुमोदना होती है। प्रत्यक्ष में कोई निर्देश व सीधा संबंध नहीं रहता है। लेकिन इस हिंसा की मात्रा का विवेक समझा जा सकता है। 'किसी के जीविकोपार्जन' के लिए पैसा देते समय सोचना है कि वह धंधा अधिक हिंसा का न हो या वह कुव्यसन का पोषण न करता हो, यह ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गवेषणापूर्वक रखा जा सकता है। जैसे बूचड़खाने के लिए या मदिरा बनाने के लिए उपयोग में न हो, इत्यादि।

(३) शेयर खरीद-फरोख्त- कंपनियों के शेयर खरीदना, जिनके दाम बढ़ने की संभावना हो तथा उनका लाभांश रूप में या मूल्य वृद्धि रूप में मुनाफा प्राप्त करना।

उद्देश्य - केवल कम्पनी की कार्यक्षमता, कुशलता व भविष्य की योजनाएँ नजर में रखी जाती हैं। जिससे लाभ की संभावना ज्यादा हो। केवल उसके उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर ही लोग निर्णय लेते हैं।

कर्म-बंध की विवक्षा - इन संस्थानों में प्रत्यक्ष भागीदारी व निर्देशन नहीं रहता है। परोक्ष रूप से उनकी अनुमोदना होती है। इसमें केवल एक करण है। करूँ नहीं, कराऊँ नहीं का करण नहीं लगता है। यह व्यापार की श्रेणी का काम है, न कि कम्मे की। अतः श्रावक के करने योग्य है। केवल महाहिंसक कंपनियों से बचने का विवेक रखना है, जिससे उन धंधों की अनुमोदना न हो।

(४) शेयर दलाली - जो भी लोग शेयर खरीद बिक्री करते हैं, उनको सुविधा प्रदान कराना तथा उस सर्विस के बदले में दलाली देना।

उद्देश्य - लोगों को खरीद-बिक्री करने की सुविधा देना। कौनसी कंपनी का शेयर खरीदा जाता है, उस निर्णय में भागीदारी नहीं के बराबर रहती है।

कर्म-बंध की विवक्षा - कम्पनियों के कार्य-निष्पादन में व निर्देशन में भागीदारी नहीं रहती है। प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी के कार्य में अनुमोदना नहीं के बराबर रहती है। परोक्ष प्रोत्साहन होता है, लेकिन यह विवेक रखना है कि महाहिंसक कम्पनियों (बूचडखाने व शराब कम्पनी) की अनुशंसा नहीं हो। इस तरह यह श्रावक के करने योग्य व्यापार है, ऐसा समझ में आता है।

(५) ट्रेडिंग टर्मिनल - खुद फाटका नहीं करते हैं, लेकिन कराते हैं। उनकी कभी-कभी अनुमोदना भी करते हैं। अतः उपर्युक्त प्रकार का निमित्त तो बैठता ही है। लेकिन इसके अलावा जुआ के प्रकार का जो काम हो रहा है, उससे कुव्यसन-प्रवृत्ति बढाने का तो काम होता है। हालांकि अर्थशास्त्री इसको जुआ न मानकर एक आवश्यक आर्थिक प्रक्रिया मानते हैं।

(६) वकालत - चूंकि वकील शुद्ध न्याय की प्राप्ति में सहायता देता है, अतः सामान्यतः यह पेशा महारम्भी नहीं लगता है। लेकिन सत्य/असत्य की परवाह न करके केवल आर्थिक लाभ के लिए सत्य को असत्य सिद्ध करना, धन्धे का दुरुपयोग करने रूप महारम्भ है।

(६) इंजीनियरिंग का पेशा या व्यवसाय - सीधे उत्पादन में काम करना, डिजाइन या सलाहकार के रूप में कार्य करना, कम्प्यूटर (सहयोगी काम) में, मानव संसाधन या वस्तु भंडार आदि में कार्य करना।

इन सबमें अलग-अलग प्रकार की परिस्थितियाँ बनती हैं। उनमें प्राथमिक भावनाओं व आसक्ति के अनुरूप कर्म का बंधन होता है। एक मूल सिद्धांत जो सामने उभर कर आया है, वह यह है कि भावना में यदि अनासक्ति एवं अहिंसा का भाव है तो जीवन-निर्वाह के साधन महारम्भ एवं महापरिग्रह से युक्त नहीं होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

भगवान् महावीर ने आजीविका की नैतिकता के लिए दंडविधान नहीं बल्कि धर्म का सहारा लिया। उन्होंने हृदय परिवर्तन व सम्यक् भावना पर विशेष जोर दिया है। मानव जीवन इतना तुच्छ या सस्ता नहीं है कि दो पैसे कमाने के लिए दुर्व्यसन और हिंसा को प्रोत्साहन दिया जाये। ऐसे धंधों को कुत्सित कर्म करार दिया गया। उन्होंने केवल यही नहीं कहा कि तुम स्वर्ग में जाकर सुख-शांति प्राप्त करो। उन्होंने तो यह भी कहा है कि तुम जहाँ रहते हो, वहीं पर स्वर्ग का वातावरण बनाओ। यदि तुम इस दुनिया में देवता बन सकते हो, तभी तुम्हें देवलोक मिल सकता है। उनका संदेश व्यावहारिक, प्रायोगिक व अपने जीवन में उतारने योग्य है। इसको सरल भाषा में आम आदमी के लिए इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

१.अपने कर्तव्य की अवहेलना मत करो, परिश्रम करो, सादगी से रहो।

२.जीवन का संचालन इस प्रकार करो कि अपनी करुणा जागृत रहे तथा आसपास का वातावरण स्वर्ग जैसा बनने में मदद मिले।

३.निरर्थक हिंसा का त्याग करो। कुव्यसन पोषक और महारम्भी धंधों की अनुमोदना तक से बचो।

४.आजीविका के व्यापार को अल्पारम्भ व महारम्भ की तुला पर तौल कर हिंसा के अल्पीकरण का विवेक रखो।

५.लोभ और आसक्ति पर लगाम रखकर समभाव से धंधे करो।

वास्तव में जब महावीर भगवान् के सिद्धांतों के मर्म पर चिंतन करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे कि उन्होंने इन सिद्धान्तों का उपदेश इसी युग को लक्ष्य में रख कर दिया हो। यद्यपि धर्म-सिद्धांत का वर्णन शास्त्रों में हुआ है, लेकिन उसका मूर्त व्यावहारिक रूप तो उसके अनुयायियों के आचरण से ही प्रकट होता है।

-40, Kamani Centre, Jameshedpur

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org